त्रि-आयामी कलाएँ
Three Dimentional Arts

यह एक प्राचीनतम विधा है जिसमें चित्रों के आभासी त्रि-आयामी दृष्टिभ्रम की अपेक्षा इनका वास्तविक त्रि-आयामी रूपाकार होता है और इनके निर्माण (सृजन) के लिए भी वास्तविक त्रि-आयामी स्थान की आवश्यकता होती है। त्रि-आयामी कलाओं में मूर्तिकला एवं मृत्तिका/मृद् भाण्ड (Ceramic/Pottery) दृश्य कला के प्रभावी स्वरूप हैं जिनका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मोहरें

मूर्तिकला (Sculpture)

भारत में मूर्तिकला की एक समृद्ध परम्परा रही है। भारतीय मूर्तिकला के प्रमाण सिन्धु घाटी की सभ्यता (2700 ई.पू. से 1700 ई.पू.) में भी प्राप्त हुए हैं जिनमें पत्थर की मूर्तियाँ एवं मृण्-मूर्तियाँ तथा मोहरें प्रमुख हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता से मौर्यकाल (चौथी शताब्दी ई.पू.) तक मूर्तिकला का अन्धकार काल रहा है जिसमें मूर्तिकला के प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। मौर्यकाल से वर्तमान तक भारत में मूर्तिकला विभिन्न स्तरों पर विकसित हुई है जिसके प्रमाण शिला स्तम्भों, स्तूपों, मन्दिरों कलादीर्घाओं एवं व्यक्तिगत संग्रहों में उपलब्ध हैं। मूर्तियाँ मूलतः दो प्रकार की होती हैं —

(अ) **पूर्ण रूप से स्वतन्त्र** या **बिना टेक वाली मूर्तियाँ** (Free Standing Sculptures) — इन मूर्तियों के सामने, बराबर (दोनों तरफ), पीछे एवं ऊपर के सभी आयाम होते हैं। एक कलाकृति जिसमें छवि को एक समरूप पूर्णाकार (Full round) स्वरूप में सृजित किया जाता है और इसे सभी तरफ से देखा जाता है। यह त्रिआयामी कला का सबसे प्रभावी एवं सर्वोत्तम स्वरूप होता है जो दर्शक को सभी ओर से देखने के लिए प्रेरित करता है अर्थात् देखने वाला इनके चारों तरफ घूमकर देख सकता है।

पूर्ण रूप से स्वतन्त्र मूर्ति, राम किंकर बैज

Scanned with CamSc

(ब) **उभारदार मूर्तियाँ** (Relief Sculptures) — ये वे मूर्तियाँ होती हैं जिनमें पीछे का भाग समतल और इसी समतल में से आगे का भाग उभरी हुई मूर्ति के रूप में दिखाई देता है। इस दूसरे स्वरूप में कलाकृति की छवियों के एक समतल धरातल से भीतरी (आन्तरिक) या बाह्य रूप में विकसित (सृजित) किया जाता है जो द्विआयामी के सदृश जैसी होती है उन्हें उभारदार (Relief) कहा जाता है। ये मूर्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं — (i) कम उभार (Low relief), (ii) उच्च उभार (High relief) एवं (iii) मध्यम उभार (Mid relief)

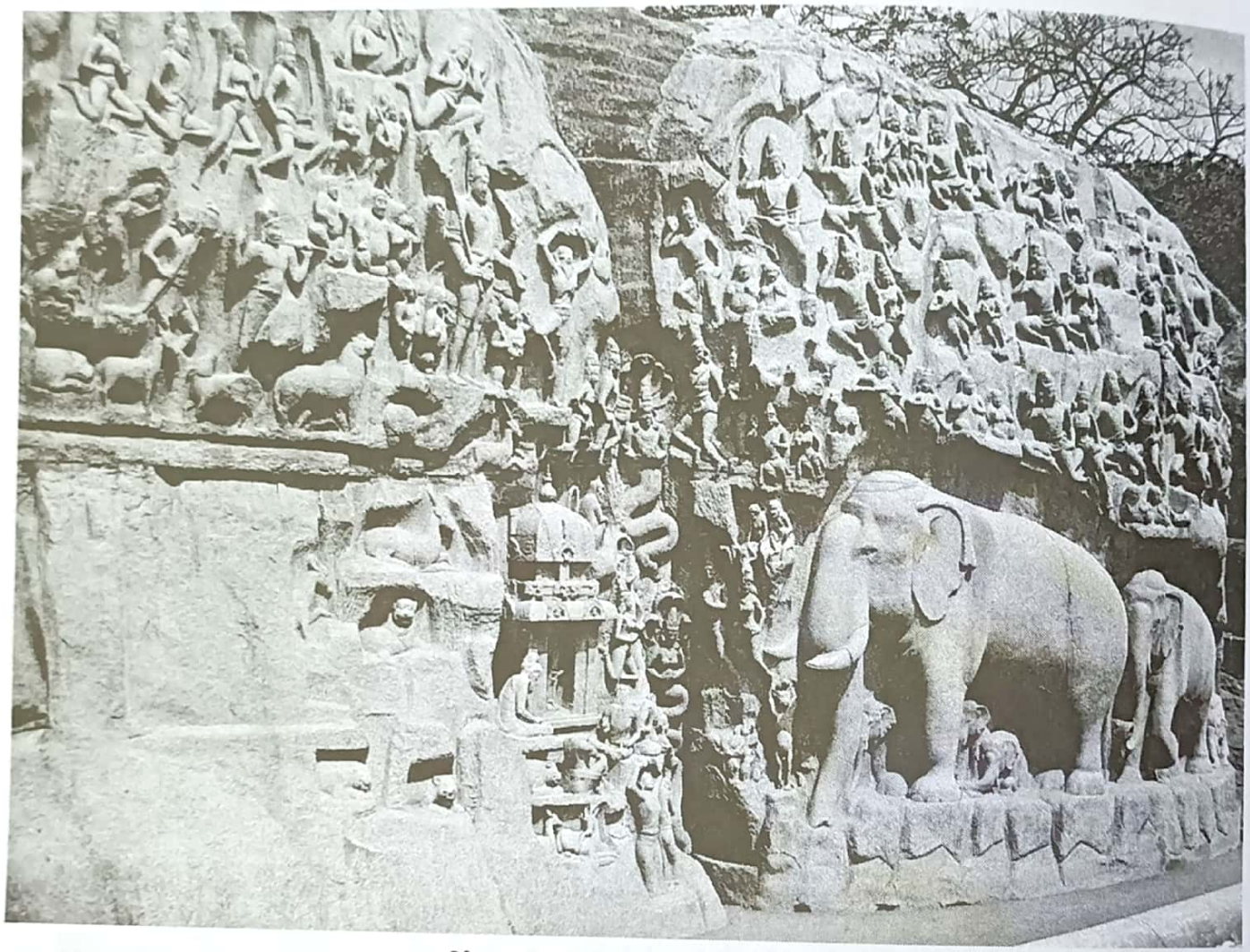

उभारदार मूर्ति, 'गंगा अवतरण', महाबलीपुरम्, 7वीं शताब्दी

कम उभारवाली मूर्ति, 'जैन सन्त'
गिरिराज शर्मा, 2014 ई.

धरातल से कम उभार वाली कलाकृतियों को हल्का उभार (Low Relief or Bas Relief) के नाम से जाना जाता है। यह इतने कम उभार वाली होती है कि जहाँ प्रकाश रुकता है वहाँ पर इसकी छाया भी दिखाई देती है। इसका अन्य स्वरूप उच्च उभार (High Relief) वाली कलाकृतियाँ होती हैं। तकनीकी रूप में उच्च उभार वाली कलाकृति उसे कहा जाता है जिसमें उसकी छवियों (आकृतियों) का आधा या आधे से अधिक भाग पृष्ठभूमि से आगे निकलकर (उभरा हुआ) वास्तविक स्थानिक गहराई

Scanned with CamSc

प्रक्षेपित करे। उपर्युक्त दोनों के बीच की मूर्तियाँ मध्यम उभार वाली होती हैं। त्रिआयामी कला के इस स्वरूप को अग्रभागीय (Frontal) भी कहा जाता है जिसमें इसके मूल तत्व केवल सामने से ही दिखाई देते हैं तथा कलाकृति (मूर्ति) का पीछे का भाग लगभग समतल होता है। अपरिष्कृत सामग्री (पत्थर, मिट्टी एवं लकड़ी आदि) से दोनों प्रकार की मूर्तियों के सृजन के लिए मुख्यतः चार पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है — 1. उत्कीर्णन करना (Carving), 2. मूर्ति गढ़ना (Modling), 3. ढलाई करना (Casting) — धातु की ढलाई (Metal Casting), फाइबर ग्लास (Fiber glass), 4. सामग्री को जोड़ना या संरचना करना आदि (Assembling or Construction etc.)।

उच्च उभारवाली मूर्तियाँ, महादेव मन्दिर, खजुराहो, 10-11वीं शताब्दी

1. **मूर्ति उत्कीर्णन पद्धति** — इसमें कठोर सामग्री जैसे- पत्थर, लकड़ी एवं हाथीदाँत आदि को काटकर एवं तराश कर मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।
2. **मूर्ति गढ़ना** — इस पद्धति द्वारा लचीली सामग्री, जैसे — मिट्टी, मोम एवं प्लास्टर आदि से मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।
3. **ढलाई करना** — यह पद्धति मूर्ति के मूल आकार को सृजित करने की अपेक्षा पूर्व में तैयार की गई मूर्ति के पुनर्उत्पादन की विधि है जिसमें पिघली या तरल सामग्री, जैसे — प्लास्टर (पी.ओ.पी.), ताँबा, काँसा एवं फाइबर ग्लास आदि को तरल रूप (पिघलाकर) में परिवर्तित कर मूर्तियों की ढलाई की जाती है।
4. **सामग्री को जोड़कर मूर्ति बनाने की पद्धति** में अलग-अलग सामग्री, जैसे — लकड़ी, लोहा, प्लास्टिक, तार, कपड़े, पत्थर एवं टीन आदि को जोड़-जोड़कर मूर्ति बनाई जाती है। यह मूर्ति निर्माण की अपरम्परागत विधि है। इसके अतिरिक्त अन्य अपरम्परागत पद्धतियों जैसे — प्रकाश (डिजिटल लाइट), प्राकृतिक वस्तुओं, खेतों, बगीचों, पेड़ों एवं फसलों आदि को भी काँट-छाँटकर एक रूपाकार सृजित कर मूर्ति का स्वरूप बनाया जाता है।

मध्यम उभार वाली मूर्तियाँ, साँची के स्तूप के तोरण द्वार का भाग, 70-25 ई.पू.

कुछ मूर्तियाँ इस प्रकार बनाई जाती हैं कि वे समय और स्थान के जरिये घूमती हैं तो उन्हें **गत्यात्मक** (Kinetic) मूर्तियाँ कहा जाता है। उपर्युक्त पद्धतियों द्वारा मूर्तियाँ बनाने (सृजित करने) के लिए दो प्रक्रियाएँ युक्त की

Scanned with CamSc